International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

अशोक के वृहत् शिलालेखों में वर्णित 'लोक जीवन'

डा. गरिमा भारती

सहायक आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोधसार

चौथी से दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में जिस प्रमुख साम्राज्य ने एक अखंड भारत की नींव रखी वह मौर्य साम्राज्य के नाम से जाना जाता है। इस वंश की स्थापना चंद्रगुप्त मौर्य के द्वारा की गयी थी परंतु इस वंश के एक प्रमुख शासक ने तत्कालीन देश की गतिविधि और विचारधारा को अप्रतिम रूप से परिवर्तित कर दिया, इतिहास में वह शासक 'देवानंप्रिय अशोक' के नाम से विख्यात हुआ। अशोक ने अपने शासन काल में अनेक लेख लिखवाए, यह लेख मुख्यतः उसके साम्राज्य के सीमाओं एवं प्रमुख नगरों में उत्कीर्ण थे। इन अभिलेखों से तत्कालीन मौर्य साम्राज्य के संपूर्ण परिदृश्य पर प्रकाश पड़ता है। इन अभिलेखों को सर्वप्रथम पढ़ने का श्रेय जेम्स प्रिंसेप को जाता है जिन्होंने 1837 में अशोक के शिलालेखों पर एक लेखमाला का प्रकाशन किया।अशोक के लेखों से अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारियों पर प्रकाश पड़ता है जैसे- प्रशासनिक व्यवस्था, अशोक का धम्म, कलिंगयुद्ध, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन। इन सभी महत्वपूर्ण तथ्यों के साथ तत्कालीन लोकजीवन पर भी समग्र दृष्टि प्राप्त होती है कि मौर्य काल में समाज में कौन सी प्रथाएँ प्रचलित थी, लोगों के सोचने का नज़रिया कैसा था, अशोक अपनी प्रजा से क्या अपेक्षाएँ रखता था एवं किस प्रकार के सामाजिक मूल्यों की अपेक्षा वह अपने समाज से कराता था। इस उद्देश्यसे प्रस्तुत शोध में अशोक के अभिलेखों विशेषकर वृहद् शिलालेखों में वर्णित लोकजीवन का किस प्रकार वर्णन मिलता है, का उल्लेख किया गया है।

मौर्य साम्राज्य के संपूर्ण परिदृश्य के जानकारी का सबसे प्रमाणिक पुरातात्विक स्रोत 'अशोक के अभिलेख' है। अशोक के अभिलेखों को स्पष्ट करे तो इसके तीन प्रकार मिलते है :- शिलालेख, गुहालेख एवं स्तंभ लेख। अशोक ने अपने अभिलेखों को महत्वपूर्ण स्थानों पर, नगरों के निकट, प्रसिद्ध व्यापारिक और यात्रा मार्गों पर या धार्मिक महत्व के स्थानों के आसपास उत्कीर्ण करवाया गया था। इनका उद्देश्य अधिक से अधिक लोगों को उसके आदेशों से परिचित कराना था। प्रायः अधिक महत्वपूर्ण आदेश वृहद् शिलाओं पर उत्कीर्ण किए गए हैं। अशोक के वृहद् शिलालेख संख्या में चौदह हैं। इनके आठ संस्करण स्थान गिरनार, कालसी, शहबाजगढ़ी, मानसेहरा, धौली, जौगड़, सोपारा, एरागुडी से प्राप्त हुए हैं। इनमें अधिकतर स्थान उसके साम्राज्य की सीमा पर स्थित थे। इनमें प्रथम पाँच स्थलों से चौदहों शिलालेख पूर्णतः अथवा आंशिक रूप में मिले हैं, धौली व जौगड में प्रथम दस व चौदहवें अभिलेखों के साथ दो नये अभिलेख मिलते हैं।इनको पृथक् कलिंग शिलालेख प्रथम और द्वितीय कहा जाता है। इसके अतिरिक्त अशोक का लघु शिलालेख अब तक महत्वपूर्ण स्थानों से प्राप्त हुआ है। जैसे- रूपनाथ, सासाराम, बैराट, गुर्जरा, मास्की, ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर, जेटिंगरामेश्वरम, एर्रागुडि, गोविमठ, पालकीगुण्डू, राजुल मंडगिरी, अहरौरा, भाब्रु। इनमें से बहुत से स्थलों से प्राप्त संस्करण काफी खण्डित हो गये हैं। इन्हीं वृहद् शिलालेखों में जिस प्रकार के लोक जीवन का मिलता है उसका वर्णन निम्न है :-

1. अहिंसा पर बल:-

अशाक के **प्रथम वृहद् शिलालेख** में कहता है कि-

इयं धम्मलिपि देवानंप्रियेन प्रियदसिना राजा लेखापिता [।] इध न कि चि जीवं आरभित्पा प्रजूहितव्यं [।] न च समाजो कतव्यो [।] बहुकं हि दोसं समाजम्हि पसति देवानंप्रियो प्रियदसि राजा [।] अस्ति पि तु एकचा समाजा साधुमता देवानं प्रियस प्रियदसिनो राजओ [।] पुरा महानसम्हि देवानंप्रियस प्रियदसिनो राजो अनुदिवसं बहूनि प्राणसतसहस्रानि आरभिसु सूपाथाय [।] से अज यदा अयं धंमलिपी लिखिता ती एव प्राणा आरभरे सूपाथाय द्वो मोरा एको मगो सो पि मगो न ध्रुवो [।] एते पि त्री प्राणा पछा न आरभिसरे [॥]

अर्थात् यह धर्मलिपि देवानंप्रिय प्रियदर्शी राजा द्वारा लिखवाई गई। यहां कोई जीव मार कर हवन न किया जाए और न कोई समाज किया जाए। देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा समाज में बहुत से दोष देखते है। ऐसे भी कुछ समाज है जो देवानंप्रिय प्रियदर्शी राजा के मत

में शुभ है। पहले देवानंप्रिय प्रियदर्शी राजा के रसोई में प्रतिदिन बहुत लाख प्राणी सूप के लिए मारे जाते थे। आज जब से यह धम्मलिपि लिखवाई गई सूप के लिए तीन प्राणी ही मारे जाते हैं। दो मोर और एक हिरण (अर्थात् दो पक्षी और एक पशु) वह हिरण भी सदैव नहीं। ये तीन प्राणी भी बाद मे नही मारे जाएंगे।

यदि इस प्रथम शिलालेख को लिखवाने का मंतव्य निकाला जाए तो हो सकता है कि यह अशोक के साम्राज्य मौर्य में पशु हिंसा का अत्यधिक बोलबाला था जिसे कम करने एवं भविष्य में समाप्त करने हेतु वह इस राजाज्ञा को लिखवा रहा है। जिसका उद्देश्य समाज में अहिंसा का प्रसार करना है।

वह कहता है कि हवन हेतु जीवों की हत्या न की जाए अर्थात् समारोह एवं अनुष्ठानों में हवन के समय जो पशु बलि दी जाती थी वह इससे असन्तुष्ट है जिस कारण वह अपन शिलालेख में सर्वप्रथम समाज में पशु हिंसा पर रोक लगाना चाहता है। वह आगे कहता है कि राजमहल की रसोई में जो प्रतिदिन अनेक पशु भोजन हेतु मारे जाते है उससे भी वह बहुत असन्तुष्ट है। हो सकता है कि यह प्रथा समाज में बहुत अधिक प्रचलित रही हो जिसे एकाएक समाप्त करने से सम्भवतः समाज में असंतोष हो सकता था। अतः वह प्रारम्भ में केवल पशु हिंसा रोकने हेतु केवल तीन प्राणियों विशेष दो मोर, एक हिरण को ही मारने का आदेश दे रहा है जिसमे वह यह भी आदेशित करता है कि भविष्य में इन तीन प्राणियों की भी हत्या नहीं की जाएगी। इस प्रथम शिलालेख में अशोक अपनी अहिंसा की नीति पर बल देता है। इस उद्धरण से समाज में प्रचलित पशु बलि प्रथा एवं राजा की रसोई में भोजन हेतु पशु हिंसा का उल्लेख मिलता है।

2. चिकित्सा व्यवस्था का उल्लेख :-

अशोक अपने **द्वितीय वृहद शिलालेख** में अपने सीमावर्ती, आन्तरिक एवं विदेशी राज्यों का वर्णन करते हुए चिकित्सा व्यवस्था का उल्लेख करता है कि-

सर्वत विजितम्हि देवानंप्रियस पियदसीनो रायो एवमपि प्रचतेषु यथा चोडा पाडा सतिययुतो केरलपुतो आ तंबपणी अंतियको योनराजा ये वा पि तस अतियकस समीपं राजानो सर्वत्र देवानप्रियस रजो द्वे चिकिछाकता मनुसचिकीछा च पसुचिकीछा च । ओसुढानि च यानि मनुसोपगानि च पसोपगानि च यत यत नास्ति सर्वत हारापितानि च रोपापितानि च । पंथेसू कूपा च खानापिता व्रछा च रोपापिता परिभोगाय पसुमनुसानं ॥

देवताओ के प्रिय प्रियदर्शी राजा के राज्य में सभी जगह और जो सीमावर्ती राज्य है जैसे चोल, पाण्ड्य, सतियपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी तक और यवनराज अंतियोक और जो अंतियोंक के भी पड़ोसी राजा है उन सबक राज्यों तक देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा का प्रबन्ध किया है - मनुष्य की चिकित्सा और पशुओं की चिकित्सा । औषधियाँ भी मनुष्यों के उपयोग की और पशुओं के उपयोग की जहां-जहां नहीं थी वहां-वहाँ मंगवायी गयी और रोपवायी गयी। मूल और फल भी जहां-जहां नहीं गए वहां-वहाँ सब जगह मंगवाये और रोपवाए गए है। मार्गों पर पशुओं और मनुष्यों के आराम के लिए कुऐं खुदवाए गए है और वृक्ष लगवाए गए है।

इस लेख के अनुसार मौर्य कालीन चिकित्सा व्यवस्था का प्रमाण मिलता है। यह चिकित्सा दो प्रकार होती थी मनुष्य चिकित्सा एवं पशु चिकित्सा । सम्भवतः इसके लिए अलग-2 चिकित्सकों की भी व्यवस्था रही होगी। यद्यपि पुरातात्विक प्रमाणों से किसी प्रकार के चिकित्सालय का साक्ष्य नहीं प्राप्त होता परंतु साहित्यिक प्रमाण विशेषकर अर्थशास्त्र में ऐसे पौधों के बीज बाहर से मंगाने की सलाह दी है जो दवा के काम आते हैं या अन्य रूपों में उपयोगी हो। इन पर आयात शुल्क माफ था। एक विशेष कथा का भी उल्लेख बुद्घोष के सामन्तपासादिका में मिलता है कि दवाओं के अभाव में एक भिक्षु की मृत्यु हो गयी। इस पर अशोक ने नगर के चारों दरवाज़ो पर तालाब दवाओं से भरवा दिये। बरुआ जैसे विद्वानों के कहना है कि अशोक द्वारा केवल औषधियों की व्यवस्था की गयी न कि अस्पतालों की। अशोक के किसी भी अभिलेख में चिकित्सालय के विषय में साक्ष्य नहीं मिलते।

सप्तम स्तम्भ लेख में अशोक विश्रामगृहों, आम्रवाटिका, आपानो का तो उल्लेख करता है परंतु चिकित्सालय का नहीं। हो सकता है कि चिकित्सा हेतु एक विशेष स्थान न हो। अपितु चिकित्सक स्वयं रोगी के पास आते हो। औषधियां की आपूर्ति हेतु एक व्यवस्था का उल्लेख है सम्भवतः वे औषधियां जो दुर्लभ है एवं कही उपलब्ध नहीं वहां उसे उपलब्ध कराया जाए। अशोक मार्गों पर वृक्ष लगवाने और कुऐ खुदवाने की बात करता है जिसका एक अर्थ यह हो सकता है व्यापार अथवा तीर्थ यात्रा हेतु विकसित मार्ग तंत्र, सड़क मार्ग अवश्य ही रहा होगा जिस पर लोगों को समस्याएँ न हो इसलिए उसने बैठने हेतु वृक्ष एवं पानी की व्यवस्था के लिए कुऐ खुदवाए।

वह न केवल अपने साम्राज्य में बल्कि सीमावर्ती राज्यों में पशु एवं मनुष्य चिकित्सा, औषधियों, विकसित मार्ग व्यवस्था, वृक्ष, कुऐ आदि की उचित व्यवस्था कर प्रजा को सन्तुष्ट करना चाहता था।

3. नैतिक नियमों के अनुपालन हेतु प्रशासनिक तंत्र का गठन :-

अशोक अपने **तृतीय वृहद् शिलालेख** में अपने धम्म के अनुपालन में एक आदर्शवादी समाज की कल्पना करता है । वह लोगों को नैतिक नियमों सार बताता है एवं नियमों के अनुपालन हेतु वह कुछ प्रशासनिक अधिकारियों को नियुक्ति करता है, जो समाज में इनका अनुपालन सुनिश्चित करेंगे। वह कहता है कि-

देवानंपियो पियदसि राजा एवं आह ।द्वादसवासाभिसितेन मया इद आञपितं [।] सर्वत विजिते मम युता च राजूके च प्रादेसिके च पचसु पंचसु वासेसु अनुसं यानं नियातु एतायेव अथाय इमाय धमानुसस्टिय यथा अया य पि कंमाय [।] साधु मातरि च पितरि च सुत्रूसा मित्रसंस्तुत जातीनं बाम्हण समणानं साधु दानं प्राणानं साधु अनारंभो अपव्ययता अपभांडता साधु [|] परिसा पि युते आजपयिसति गणनायं हेतुतो च व्यंजनतो च [॥]

अर्थात देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहता है कि राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में मैंने यह आज्ञा दी कि मेरे राज्य में सभी जगह युक्त, राजूक और प्रादेशिक बारी-बारी से पांच-पांच वर्ष पर अन्य कामों के अलावा इस काम के लिए अर्थात् धार्मिक उपदेश देने के लिए दौरे पर अवश्य जाए: माता-पिता की सेवा करना अच्छा है, मित्र-परिचित, स्वजनो, ब्राहमणो, और श्रमणो को दान देना अच्छा है, जीव-हिंसा न करना अच्छा है, थोड़ा व्यय करना और थोडा संचय करना अच्छा है परिषद भी मेरे आदेशों और उनके भावो के अनुसार गणना के लिए युक्तो को आज्ञा देगी। वह अपने समाज से यह आशा करता है कि लोग नैतिक नियमों का पालन करेंगे जिससे की एक आदर्शवादी समाज को बनाया जा सके।

इसी प्रकार अपने **पांचवे वृहद् शिलालेख** में अशोक कहता है कि-

से अतिकंत अंतल नो हुतपुलव धंममहामता नामा [।] तेदसव- साभिसितेना ममया धंममहामाता कटा [।] ते सवपासंसु वियापटा । धंमाधिथानाये चा धंमवढिया हिदसुखाये वा धंमयुतसा योनकंबोजगंधालानं.....ए वापि अंने अपलंता। भटमयेसु बंभनिभेसु अनथेसु बुधेसु हिदसुखाये धंमयुताये अपलिबोधाये वियपटा ते [।] बंधनवधसा पटिविधानाये अपलिबोधाए मोखाये चा एयं अनुबधा पजा व ति वा । कटाभिकाले ति वा महालके ति वा वियापटा ते । हिदा बाहिलेसु चा नगलेसु सवेसु ओलोधनेसु भातिनं च ने भगिनिना एवा पि अंने नातिक्ये सवता वियापटा। ए इयं धंमनिसिते ति वा दान सुयुते ति वा सवता विजितसि समा धंमयुतसि वियापटा ते धंम महामाता । एताये अठाये । इयं धंमलिपि लेखिता चिलथितिक्या होतु तथा च मे पजा अनुवततु ।

अर्थात् पूर्व काल में धर्ममहामात्र नहीं होते थे, पर मैंने अपने अभिषेक के तेरहवें वर्ष बाद इन धर्ममहामात्र की नियुक्ति की। ये धर्ममहामात्र सभी सम्प्रदायों के बीच धर्म की स्थापना व वृद्धि करेंगे। यौन (यवन), कम्बोज, गांधार, राष्ट्रिक, पितिनिक, अपरांत या पश्चिमी सीमा के लोग भी है। उनमे धर्मरत लोगों के हित व सुख के लिए नियुक्त गए है और इनका मुख्य कार्य सैनिको और उनके मालिकों, ब्राह्मण, सन्यासियों, गृहस्थों, अनाथों और अशक्त वृद्धों के बीच धर्म में अनुरक्त जनों के हित को सुख के प्रयत्न करना एवं क्लेशों से मुक्त कराना है। वे इसलिए भी नियुक्त है जिससे वह वध और बंधन के विरूद्ध प्रतिकार करे क्लेश से मुक्ति के लिए, उन लोगों की रिहाई हेतु जिनके बहुत से बाल बच्चे है या जो महाविपत्ति ग्रस्त हो एवं या जो अति वृद्ध हो उनकी सेवा सहायता के लिए नियुक्त किए गए है।

अशोक ने एक ऐसा प्रशासनिक तंत्र का गठन किया जिसके द्वारा वह लोगों को सौहादर्य एवं सुविधाएँ प्रदान कर सके। एक प्रकार से वह इन अधिकारियों के माध्यम से स्वयं अपनी प्रजा से जुड़ना चाहता था। वह सुनिश्चित करना चाहता है था कि उसकी प्रजा सुखी हो।

ठीक इसी प्रकार **छठे वृहद् शिलालेख** में वह प्रतिवेदको की नियुक्ति करता है वह कहता है-

देवा..सि राजा एवं आह [।] अतिक्रातं अंतरं न भूतपुव सव...ल अथकंमे व पटिवेदना वा [।] त मया एवं कतं [।] सवे काले भुंजमानस मे ओरोधनम्हि गभागारम्हि वचम्हि व विनीतम्हि च उयानेसु च सवत्र पटिवेदका स्टिता अथे मे जनस पटिवेदेथ इति [।] सर्वत्र च जनस अथे करोमि ।] य च किचि मुखतो आञपयामि स्वयं दापकं वा स्रावापकं वा य वा पुन महामात्रेसु आचायिके अरोपितं भवति ताय अथाय विवादो निझती व संतो परिसायं आनंतरं पटिवेदेतव्यं मे सर्वत्र सर्वे काले [।] एवं मया आञपितं [।] नास्ति हि मे तोसो । उस्टानम्हि अथसंतोरणाय व [।] कतव्यमते हि मे सर्वलोकहितं [।]

कि अतीत काल में पहले हर समय राज्य का काम नहीं होता था न ही हर समय प्रतिवेदको से समाचार सुने जाते थे इसलिए अशोक ने प्रबंध किया है कि प्रतिवेदको उसे प्रजा का हाल सुनाने का कार्य करेंगे। वह प्रतिवेदको से कहता है कि किसी भी समय चाहे अशोक भोजन करता रहे या रानिवास में रहे या शयनगृह में रहे या पशुशाला में रहे या धर्मोपदेश स्थान पर या उद्यान में। प्रतिवेदक मुझे प्रजा का हाल सुनाए ।अर्थात् वह प्रजा के सुख के प्रति बहुत सचेत है । वह चाहता है कि उन्हें किसी भी प्रकार का कष्ट न हो। उसका मुख्य कार्य केवल सब लोगों का हित करना है।

इसके अतिरिक्त अशोक अपने **12 वृहत् शिलालेख** पुनः कुछ अधिकारियों की बात करता है वह कहता है -

देवानंपियो नो तथा दानं व पूजां व मंञते यथा किंति सारवढी अस सर्वपासडानं [।] बहका च एताय अथा व्यापता धंममहामाता च इथीझखमहामाता च वचभूमीका च अञ च निकाया [1] अयं च एतस फल य आत्पपासंडवढी च होति धंमस च दीपना ।

देवताओं के प्रिय दान या पूजा को इतना बड़ा नहीं समझते जितना इस बात को कि सभी संप्रदायों में सार की वृद्धि हो और सभी संप्रदायों का विस्तार हो, इसीलिए धर्म-महामात्र, स्त्री-अध्यक्ष-महामात्र (महामात्र जो स्त्रियोंके इंचार्ज या अध्यक्ष थे), ब्रजभूमिक और इसी तरह अन्यनिकायों के राज्य कर्मचारी नियुक्त हैं। इसका फल यह है कि इससे अपने संप्रदाय की उन्नति होती है और धर्म का गौरव भी बढ़ता है।

अशोक धर्म-महामात्र, स्त्री अध्यक्ष महामात्र, ब्रजभूमिको नामक अधिकारियो को नियुक्त करता है जो न केवल अशोक के धम्म प्रसार करेंगे बल्कि उनका कार्य समाज में अन्य संप्रदायों के बीच सारवृद्धि भी होगा।

4. आदर्शवादी समाज की कल्पना :-

अपने **चतुर्थ वृहद् शिलालेख** में कहता है -

अतिकातं अंतरं बहूनि वाससतानि वढितो एव प्राणारंभो विहिंसा च भूतानं आतीसु असंप्रतिपती ब्राम्हणस्रमणानं असंप्रतीपती [।] त अज देवानंप्रियस प्रियदसिनो राजो धंमचरणेन भेरीघोसो अहो धंमघोसो विमानदर्सणा च हस्तिदसणा च अगिखंधानि च अजानि च दिव्यानि रूपानि दसयित्पा जनं [।] यारिसे बहूहि वाससतेहि न भूतपुवे तारिसे अज वढिते देवानंप्रियस प्रियदसिनो राजो धंमानुसस्टिया अनारं भो प्राणानं अविहीसा भूतानं यातीनं संपटिपती ब्रम्हणसमणानं संपटिपती मातरि पितरि सुस्रुसा थैरसुस्रुसा [।] एस अजे च बहुविधे धंमचरणे वढिते [।] वढयिसति चेव देवानंप्रियो प्रियदसि राजा धंमचरणं इदं [।] पुत्रा च पोत्रा च प्रपोत्रा च देवानंप्रियस प्रियदसिनो राजो प्रवधयिसंति इदं धंमचरणं आव सवटकपा धंमम्हि सीलम्हि तिस्टंतो धंमं अनुसासिसंति [।] एस हि सेस्टे कंमे य धंमानुसासनं [।] धंमचरणे पि न भवति असीलस [।] त इमम्हि अथम्हि वधी च अहीनी च साधु [।] एताय अथाय इदं लेखापितं इमस अथस वधि युजंतु हीनि च नो लोचेतव्या [।] द्वादसवावाभिसितेन देवानंप्रियेन प्रियदसिना राजा इदं लेखापितं [॥]

अतीत काल में कई सौ वर्षों से पशु की बलि, जीव की हिंसा और रिश्तेदारों, ब्राह्मणों और श्रमणों का अनादर बढ़ता ही गया। परंतु अब युद्ध घोष के स्थान पर धम्म घोष का आवाहन हुआ है। धर्मानुशासन से जीवों की रक्षा, रिश्तेदारों का आदर, ब्राहमण और श्रमणों का आदर, माता-पिता की सेवा, वृद्धजनों की सेवा बढ़ गई अर्थात् धर्माचरण बढ़ गए। वह आशा करता है कि प्रियदर्शी राजा के पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र भी इस धर्माचरण को करेंगे एवं धर्म एवं शील का पालने करते हुए धर्मानुशासन प्रचार करेंगे जो कि एक श्रेष्ठ कार्य है। स्पष्ट होता है कि अशोक अपने नैतिक नियमों के सार को धर्म से जोड़ता है, जिसे वह 'अनुशासन' मानता है। सदियों से जो समाज में अनादर की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है उसे कम करने हेतु वह न केवल अपनी प्रजा वे से अपितु अपने सगे संबंधियों से भी अपेक्षा करता है कि वह न केवल उनका अनुपालन करेंगे बल्कि प्रचार भी करेंगे।

अशोक पुनः वृहत शिलालेख **11** में कहता है कि-

देविनंप्रियो पियदसि राजा एवं आह [।] नास्ति एतारिसं दानं यारिसं धंमदानं धंमसंस्तवो वा धंमसंविभागो वा धमसंबंधो व [।] तत इदं भवति दासभतकम्हि सम्यप्रतिपती मातरि पितरा साधु सुश्रुषा मितसस्तुतजातिकानं बाम्हणस्रमणानं साधु दानं प्राणानं अनारंभो साधु [।] एत वतव्यं पिता व पुत्रेन व भाता व मितसस्तुतजातिकेन व आव पटीवेसियेहि इद साधु इद कतव्यं [।] सो तथा करु इलोकचस आरधो होति परच अंनंतं पुइजं भवति तेन धंमदानेन [॥]

कोई ऐसा दान नहीं जैसे धर्म का दान। और यह धर्मदान है: दास और सेवको के प्रति उचित व्यवहार, माता-पिता की सेवा, मित्रों, परिचितों, रिश्तेदारों, ब्राह्मणों, श्रमण, सन्यासियों को दान, प्राणियों की हिंसा न करता ।पुनः अशोक ऐसा कहता है, कि पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र, साथी, पड़ोसी सभी को ऐसा करना चाहिए । यह इहलोक की सिद्धि करता है एवं अनन्त पुण्य का भागी होता है।

अर्थात् अशोक समाज को आदर्श रूप में देखता है। वह अपनी प्रजा से अपेक्षा करता है वह इसे चरितार्थ करे इससे उन्हें अनन्त फल की प्राप्ति होगी

5. सभी सम्प्रदायो में सौहादर्य :-

अशोक के **सातवे शिलालेख** में कहता है-

देवानंपियो पियदसि राजा सर्वत इछति सवे पासंडा वसेयु [।] सवे ते समयं च भावसुधि च इछति [।] जनो तु उचावचछंदो उचावचरागो [।] ते सर्वं व कासंति एकदेसं व कसंति विपुले तु पि दाने यस नास्ति सयमे भावसुधिता व कतंयता व दढभतिता च निचा बाढं [॥]

इस लेख में सभी संप्रदायों के बीच सौहादर्य की बात की गयी है। अशोक चाहता है कि सभी जगह सभी सम्प्रदाय के लोग निवास करे क्योंकि सभी सम्प्रदाय संयम और चित्त की शुद्धि चाहते है। लोग पूर्णतः या आंशिक रूप से अपने कर्त्तव्यों का पालन करे। वह सभी सम्प्रदायों के बीच प्रेम की भावना पर बल देता है।

अशोक के **12 वृहद् शिलालेख** में लिखवाता है कि-

देवानंपिये पियदसि राजा सवपासंडानि च पवजितानि च घरस्तानि च पूजयति दानेन च विवाधाय च पूजाय पूजयति ने [।] न तु तथा दानं व पूजा व देवानंपियो मंञते यथा किति सारवढी अस सवपासंडानं [।] सारवढी तु बहुविधा [।] तस तु इदं मूलं य वचिगुती किंति आत्पपासंडपूजा व परपासंडगरहा व तु नो भवे अप्र अप्रकरणम्हि लहुका व अस तम्हि तम्हि प्रकरणे [।] पूजेतया तु एव परपासंडा तेन तन प्रकरणेन [।] एवं करूं आत्पपासंडं च वढयति परपासंडस च उपकारोति [।] तदंञथा करोतो आत्पपासंडं च छणति परपासंडस च पि अपकरोति [।] यो हि कोचि आत्पपासंडं पूजयति परपासंडं व गरहति सवं आत्पपासंडभतिया किति आत्पपासंडं दीपयेम इति सो च पुन तथ करातो आत्पपासंडं बाढतरं उपहनाति [।] त समवायो एव साधु किति अजमंजस धंमं स्रणारु च सुसुंसेर च [।] एवं हि देवानंपियस इछा किति सवपासंडा बहुश्रुता च असु कलाणागमा च असु [।] ये च तत्र तत प्रसंना तेहि वतव्यं [1] देवानंपियो नो तथा दानं व पूजां व मंञते यथा किति सारवढी अस सर्वपासडानं [।] बहका च एताय अथा व्यापता धंममहामाता च इथीझखमहामाता च वचभूमीका च अञ च निकाया [।] अयं च एतस फल य आत्पपासंडवढी च होति धंमस च दीपना।

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा विविध दान और पूजा से सभी संप्रदायों के प्रव्रजितों और गृहस्थों की पूजा करता है। किंतु देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा दान व पूजा को इतना नहीं मानता जितना सभी संप्रदायों में सार-वृद्धि को मानता है। सार-वृद्धि कई तरह की होती है। किंतु इसका मूल है वाकसंयम अर्थात् लोग अपने ही संप्रदाय का आदर और दूसरों के संप्रदाय की अकारण निदा न करें। निदा खास कारण से ही की जाए। दूसरे संप्रदायों की इस या उस प्रकरण में प्रशंसा ही करनी चाहिए। ऐसा करने से, मनुष्य अपने संप्रदाय की उन्नति करता है और दूसरे संप्रदायों का उपकार करता है। जो इसके विपरीत करता है वह अपने संप्रदाय की क्षति करता है और दूसरे संप्रदायों का अपकार करता है। क्योंकि जो कोई अपने सम्प्रदाय की भक्ति में आकर इस विचार से कि कैसे मैं अपने संप्रदाय का गौरव बढ़ाऊँ, अपने संप्रदाय की प्रशंसा और दूसरे संप्रदाय की निंदा करता है वह ऐसा करके वास्तव में अपने संप्रदाय को गहरी क्षति ही पहुंचाता है। इसलिए 'समवाय' ही अच्छा है, इस अर्थ में कि लोग दूसरे के धर्म को ध्यान से सुनें और सुनने को तैयार रहें। वास्तव में, देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा की यही इच्छा है कि सभी संप्रदायों के लोग बहुश्रुत हों और कल्याणकारी ज्ञान से युक्त हों। इसलिए जो लोग अपने संप्रदाय में ही अनुरक्त हैं उनसे कहना चाहिए कि देवताओं के प्रिय दान या पूजा को इतना बड़ा नहीं समझते जितना इस बात को कि सभी संप्रदायों में सार की वृद्धि हो और सभी संप्रदायों का विस्तार हो। इसीलिए धर्म-महामात्र, स्त्री-अध्यक्ष-महामात्र (महामात्र जो स्त्रियों के इंचार्ज या अध्यक्ष थे), व्रजभूमिक और इसी तरह अन्य निकायों के राज्य कर्मचारी नियुक्त हैं। इसका फल यह है कि अपने संप्रदाय की उन्नति होती है और धर्म का गौरव बढ़ता है।

अशोक इस लेख में सभी सम्प्रदायों में सार वृद्धि के विषय में बात करता है एवं इसका मूल 'वाक संयम' अर्थात् लोग अपने सम्प्रदाय का आदर और दूसरों के सम्प्रदाय की अकारण निंदा न करे। ऐसा करने से मनुष्य अपने सम्प्रदाय उन्नति करता है एवं वह दूसरों सम्प्रदाय का उपकार भी करता है। वह कहता है कि लोगों के लिए 'समवाय' अच्छा है जिसका अर्थ या तो 'संयम' या 'सुनने से' लगाया जाता है। वह कहता है कि लोग बहुश्रुत हो, कल्याणकारी ज्ञान से युक्त हो, वह दान एवं पूजा को इतना नहीं समझता जितना सभी सम्प्रदायो में सार वृद्धि को। यहां एक प्रकार से अशोक समाज में समरसता की बात करता है। वह चाहता है कि लोगों के बीच में

से अपने सम्प्रदाय एवं मतों को लेकर वैमनस्य की भावना न हो। सब न केवल अपने संप्रदाय की वृद्धि करे बल्कि दूसरे सम्प्रदायो का भी सम्मान करे। लोग बहुश्रुत बने अर्थात् दूसरे सम्प्रदायों के भी अच्छे विचारों को सुने एवं सम्मान करे।

6. अत्यधिक उत्सव, मंगलाचारण पर संयम :-

अशोक अपने 9 वृहद् शिलालेख में 'मंगलाचार' के विषय में कहता है-

देवानंपियो प्रियदसि राजा एव आह। अस्ति जनो उचावचं मंगलं करोते आबाधेसु वा आवाहवीवाहेसु वा पुत्रलाभेसु वा प्रवासंम्हि वा एतम्ही च अयम्हि च जनो उचावचं मंगलं करोते [।] एत तु महिडायो बहुकं च बहुविधं च छुदं च निरथं च मंगलं करोते त कतव्यमेव तु मगलं [।] अपफलं तु खो[।] एतरिसं मंगलं [।] अयं तु महाफले मंगले य धंममंगले [।] ततेत दासभतकम्हि सम्यप्रतिपती गुरूनं अपचिति साधु पाणेसु समयो साध बम्हणसमणानं साधु दानं एत च अञ च एतारिसं धंममंगलं नाम [।] त वतव्यं पिता व पुतेन वा भात्रा वा स्वामिकेन वा इदं साधु इदं कतव्य मंगलं आव तस अथस निस्टानाय [।] अस्ति च पि वुतं साधु दन इति [।] न तु एतारिसं अस्ता दानं व अनगहो व यारिसं धंमदानं व धमनुगहो व [।] त तु खो मित्रेन व सुहदयेन वा अतिकेन व सहायन व ओवादितव्यं तम्हि तम्हि पकरणे इदं कचं इदं साध इति इमिना सक स्वगं आराधेतु इति [।] कि च इमिना कतव्यतरं यथा स्वगारधी [ ]

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा : लोग बहुत से मंगल"(मंगलाचार) करते हैं। विपत्ति में, लड़के, लड़कियों के विवाहों में, लड़का या लड़की के जन्म पर, परदेश जाने के समय। इन और अन्य अवसरों पर लोग तरह- तरह के मंगलाचार करते हैं। पर इन अवसरों पर माताएँ और पत्नियां तरह- तरह के बहुत से क्षुद्र और निरर्थक मंगलाचार करती हैं। मंगलाचार करना चाहिए। किंतु इस प्रकार के मंगलाचार अल्प फलदायी होते हैं। पर जो धर्म का मंगलाचार है वह महाफल देने वाला है। इस मंगलाचार में यह होता है: दास और सेवकों के प्रति उचित व्यवहार, गुरुओं का आदर, प्राणियों की अहिंसा, ब्राह्मणों व श्रमण संन्यासियों को दान और इसी प्रकार के और अन्य कामों को धर्म-मंगल कहते हैं।इसीलिए पिता या पुत्र या भाई या स्वामी या मित्र या परिचित या पड़ोसी सभी से कहें "यह मंगलाचार अच्छा है; इसे तब तक करना चाहिए जब तक कार्य की सिद्धि न हो जाये।"क्योंकि जो दूसरे मंगलाचार हैं वे अनिश्चित फल देने बाले हैं। उनसे उद्देश्य की सिद्धि हो न हो। और यह इहलोक के लिए ही है। पर घर्म का मंगलाचार सब काल के लिए है। यदि इहलोक में उद्देश्य की सिद्धि न भी हो तो भी परलोक में अनन्त पुण्य मिलता है। किंतु यदि इहलोक में अभीष्ट की प्राप्ति हो जाए तो धर्म के मंगलाचार से दो लाभ होंगे - इहलोक में अभीष्ट की सिद्धि और परलोक में अनन्त पुण्य की प्राप्ति।

अर्थात् वह कहता है कि लोग बहुत से मंगल करते है, जिसका एक अर्थ 'उत्सव में होने वाला व्यय' से लगाया जा सकता है। जैसे:- लड़के एवं लड़कियों के विवाह में, विपत्ति में, जन्म पर, देश से बाहर जाने पर। इन सभी कार्यों में लोग बहुत सा व्यय करते है। इस प्रकार यह व्यय सही नहीं है, यह निरर्थक मंगलाचार है। इस प्रकार का मंगलाचार अल्प फलदायी होता है इसके स्थान पर धर्म का मंगलाचार करना चाहिए जो है दास और सेवकों के प्रति उचित व्यवहार, गुरूओ का आदर, प्राणियों की अहिंसा, ब्राहमण व श्रमण सन्यासियों को दान और इसी प्रकार के अन्य कार्यों को 'धर्म-मंगल' कहते हैं। इस धर्ममंगल से इहलोक में अभीष्ट की सिद्धि और परलोक में पुण्य की प्राप्ति होती है। एक प्रकार से अशोक समाज में होने वाले अत्यधिक उत्सवो व्यय पर विशेष चिंतित था, यही कारण था कि उसने यह राजाज्ञा लिखवायी। सम्भवतः समाज में लोग समारोह उत्सवों पर अत्यधिक व्यय करते होंगे जिसके कारण अशोक उन्हें सलाह देता है कि यह मंगलाचार सही नहीं है बल्कि इनके स्थान पर धर्म मंगल करना चाहिए। यह धर्म मंगल नैतिक आचार-विचार पर आधारित है जो न केवल इहलोक बल्कि परलोक में भी पुण्य देगा।

7. युद्ध पर रोक :-

अशोक ने अपने साम्राज्य में युद्ध प्रीति का पूर्णतः परित्याग कर दिया था। इस बात का प्रमाण अशोक के अपने **वृहद् शिलालेख 13** से होता है जिसमें वह लिखवाता है-

अठवषअभिसितस देवनप्रिअस प्रिअद्वशिस रयो कलिग विजित [।] दिअढमत्रे प्रणशतसहस्र ये ततो अपवुढे शतसहस्रमत्रे तत्र हते बहुतवतके व मूटे। ततो पच अधन पदेश अधुन लधेषु कलिगेषु तिव्र धमशिलन धमकमत ध्रमनुशस्ति च देवनप्रियस सो अस्ति अनुसोचन देवनप्रिअस विजिनिति कलिंगनी (।) अविजितं हि विजिनमनो यो तत्र वध व मरणं व अपवहो व जनस त औरवह बढं वेदनियमतं गुरुमतं च देवनंप्रियस। इदं पिचु ततो गुरुमततरं देवनंप्रियस।

इस लेख को अशोक अपने शासनकाल के 8वे वर्ष उत्कीर्ण करवाता था। वह कहता है कि कलिंग युद्ध में डेढ लाख व्यक्ति देश निकाला हुआ, एक लाख मारे गए और इससे भी कई गुना मरे। परंतु कलिंग को जीतने पर देवताओ के प्रिय को पश्चाताप हुआ है जिसके कारण

उसका धर्मानुशासन, धर्म-प्रेम, धर्मोपदेश तीव्र हो गया है। वह चाहता है कि सभी प्राणियों के साथ अहिंसा, संयम, समानता, और मृदुता का व्यवहार किया जाए। वह युद्ध विजय नहीं अपितु धर्म विजय को सबसे बड़ी विजय है। वह अपने शासनकाल में युद्ध नीति का त्याग कर देता एवं एक ऐसा समाज की कल्पना करता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे का सम्मान करे, आदर करे, मदद करे, समाज में हिंसा न हो, सौहादर्य से रहे, समाज में प्रचलित सभी संप्रदायों के मध्य सार वृद्धि हो, कोई संप्रदाय किसी दूसरे की निंदा न करे। सभी धर्म मंगल करे, धर्मानुसार धर्माचरण करे और आदर्शवादी समाज बनाए।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णित विवरण से तत्कालीन लोकजीवन के आदर्श रूप को देख सकते है। जिसमें अशोक अपनी प्रजा के सुख की कामना करता है और हर वो प्रयास करता है जिससे उसकी प्रजा को कष्ट न हो। वो अधिकारियों को नियुक्त करता है, और सगे संबंधियों से भी नैतिक नियमों के अनुपालन के अपेक्षा करता है, वह पशु एवं मनुष्य चिकित्सा के साथ अहिंसा पर भी बल देता है। अर्थात् एक आदर्श समाज के कल्पना अशोक क़ालीन समाज में देखने को मिलती है।

संदर्भ सूची

1. गोयल, श्रीराम, 1982, प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर.
2. मुकर्जी, राधाकुमुद, 2004 अशोक, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली.
3. थापर, रोमिला, 2004, अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली.
4. सरकार, डी. सी., 1979 अशोकन स्टडीज़, कलकत्ता.
5. सेन, ए. सी., 1956, अशोक्स एडिक्ट्स, कलकत्ता.
6. वूल्नर, ए सी, 1924, अशोक, टेक्स्ट एण्ड ग्लौसरी, कलकत्ता.